* ओ३म् *

महामन्त्र गायत्री

का

अर्थ और माहात्म्य

उपदेष्टा

ब्रह्मीभूत परम पूज्य श्री १०८ श्री स्वामी
परमानन्दजी महाराज, संस्थापक
श्री भगवद्भक्ति आश्रम
रामपुरा, रेवाड़ी।

प्रकाशकः—

भूमानन्द ब्रह्मचारी
भगवद्भक्ति आश्रम, रामपुरा, रेवाड़ी।

* ॐ *

निवेदन

ब्रह्मीभूत परम हंस श्री पूज्य स्वामी परमानन्द जी महाराज ने मनुष्य मात्र के कल्याण के लिये गायत्री मन्त्र का उपदेश किया है। वे अपने उपदेश में सर्वदा फर्माया करते थे कि हिन्दू मात्र का एक गायत्री मन्त्र होना चाहिये। इस मन्त्र का लेटा लेटा, बैठा बैठा, डोलता फिरता जिस भी अवस्था में हो मनुष्य मानसिक जप कर सकता है। उन्होंने लगभग १५०००० गायत्री मन्त्र की प्रतियां छपवा कर अमूल्य वितरण कराईं। इस पुस्तक में प्रकाशित गायत्री मन्त्र का अर्थ और माहात्म्य पूज्य महाराज जी ने लिखवा कर भक्ति में प्रकाशित कराया था। वह ही पाठकों के लाभार्थ पुस्तकाकार में प्रकाशित किया गया है।

भूमा–

॥ श्रो३म् ॥

गायत्री

ॐ भूर्भुवः स्वः। ॐ तत्सवितुर्वरेण्यं। भर्गो देवस्य धीमहि। धियो यो नः प्रचोदयात् ॐ ॥

गायत्री मन्त्र में १ ॐ, २ भूः, ३ भुव, ४ स्वः, ५ तत्, ६ सवितुः, ७ वरेण्यम्, ८ भर्गो, ९ देवस्य यह नौ नाम हैं। इन नौ नामों में भगवान् की स्तुति की गई है। 'धीमहि' उपासना है। 'धियो यो नः प्रचोदयात्' यह प्रार्थना है। इसमें पांच अवसान हैं। "ओ३म्" यहां प्रथम अवसान है। 'भूर्भुवः स्वः' दूसरा, 'तत्सवितुर्वरेण्यम्' तीसरा, 'भर्गो देवस्य धीमहि' चौथा, 'धियो यो नः प्रचोदयात् ॐ' यहां पांचवां अवसान है। प्रत्येक अव-

स्थान पर मन्त्र जपते समय कुछ ठहरना चाहिये।

ओं = सर्वव्यापक, सब की रक्षा करने वाला।

भूः = "भूरिति सन्मात्रमुच्यते" सत्य स्वरूप।

भुवः = "भुव इति सर्वं भावयति प्रकाशयति इति व्युत्पत्या चिद्रूपमुच्यते" चैतन्य स्वरूप ज्ञान स्वरूप।

स्वः = "सुखीयते इति व्युत्पत्या स्वरिति सुख स्वरूप मुच्यते" सुख स्वरूप।

तत् = वह अनन्त परमात्मा।

सवितुः = सबको उत्पन्न करने वाला प्रेरणा करने वाला।

वरेण्यम् = ग्रहण करने योग्य, तारीफ के लायक।

भर्गो = सब पापों को भर्जन नाश करने वाला, शुद्ध तेजः स्वरूप।

देवस्य = प्रकाश और आनन्द का देने वाला, दिव्य स्वरूप ऐसे परमात्मा का।

धीमहि = हम सब ध्यान करते हैं।

धियः = बुद्धियों को।

यः = वह परमात्मा।

नः = हमारी ।

प्रचोदयात् = धर्मार्थ काम मोक्ष में प्रेरणा करे, संसार से हटा कर अपने स्वरूप में लगावे और शुद्ध बुद्धि प्रदान करे ।

स्वामी दयानन्द जी ने गायत्री का यह अर्थ किया है ।

भूः = "भूरिति वै प्राणः" जो प्राणों का भी प्राण ।

भुवः = "यः सर्वं दुखं अपानयति" सब दुःखों से छुड़ाने हारा ।

स्व = "यो विविधं जगत् व्यानयति व्याप्नोति" स्वयं सुख स्वरूप और अपने उपासकों को सर्वसुख की प्राप्ति कराने हारे ।

सवितु = "यः सुनोति उत्पादयति स सविता" सब जगत् की उत्पत्ति करने हारे, सूर्यादि प्रकाशकों के भी प्रकाशक, समग्र ऐश्वर्य के दाता ।

देवस्य = "यो दीव्यति स देवः" कामना करने योग्य, सर्वत्र विजय कराने हारे परमात्मा का ।

वरेण्यम् = "वरतु महँ" अति श्रेष्ठ ग्रहण और ध्यान करने योग्य ।

भर्गः = सब क्लेशों को उपशम हरने हारा, पवित्र शुद्ध स्वरूप ।

तत् = उसको हम लोग ।

धीमहि = "धरेमहि ध्यायेमः" धारण करें ।

यः = वह जो परमात्मा ।

नः = हमारी ।

धियः = बुद्धियों को ।

प्रचोदयात् = उत्तम गुण कर्म स्वभावमें प्रेरणा करे ।

गायत्री मन्त्र का सविता देवता है, अग्नि मुख है, विश्वामित्र ऋषि है, गायत्री छन्द है और उपनयन प्राणायाम और जप में विनियोग (इस्तेमाल) है ।

यह गायत्री मन्त्र आदि मन्त्र है । अन्य मतों की तो बात ही क्या है वेद में भी इसके अतिरिक्त ऐसा कोई मन्त्र नहीं है जिसमें एक ही मन्त्र में भगवान् की स्तुति उपासना और प्रार्थना तीनों

हों। भगवान् के भजन में पहले भगवान् की स्तुति की जाती है, फिर उपासना ध्यान किया जाता है और पश्चात् भगवान् से प्रार्थना की जाती है। गायत्री मन्त्र में स्तुति, प्रार्थना और उपासना तीनों हैं। गायत्री ही एक ऐसा मन्त्र है जो हिंदू मात्र के लिये एक मन्त्र हो सकता है। भगवान् वेद में आज्ञा करते हैं "समानो मन्त्रः" 'कि तुम्हारा मन्त्र एक हो' अतः हिन्दू मात्र का एक गायत्री मन्त्र होना चाहिये।

मनु भगवान् ने कहा है कि विधि यज्ञ से जप यज्ञ दश गुणा फलदायक है, इसमें भी जिसमें होठ ही हिलें शतगुणा और मानसिक सहस्त्रगुणा फल देता है। लेटा लेटा, बैठा बैठा, डोलता फिरता जिस भी अवस्था में हो मनुष्य गायत्री का मानसिक जप कर सकता है। इसके जपने में किसी प्रकार का भी विधि निषेध नहीं है। इसके जपने से सब कामना पूरी होती हैं और अन्त में स्वर्ग धाम और मोक्ष की प्राप्ति होती है। इस मन्त्र से

प्रातः मध्याह्न, सायंकाल और अर्ध रात्रि के समय इस प्रकार चार बार सन्ध्या करनी चाहिये।

सायमधीयानो दिवसकृतं पापं नाशयति ।
प्रातरधीयानो रात्रिकृतं पापं नाशयति ॥
सायं प्रातः प्रयुञ्जानो अपापो भवति ।
निशीथे तुरीयसन्ध्यायां जप्त्वा वाक् सिद्धिर्भवति ॥

इति उपनिषत् ।

गायत्री का सायंकाल में जप करने वाला दिन में किये हुवे पापों का नाश करता है। प्रातःकाल में जप करने वाला रात्रि में किये हुवे पापों का नाश करता है। दोनों समय जप करने वाला निष्पाप होता है। मध्यरात्रि में जप करने से वाक् सिद्धि प्राप्त होती है। इसलिये गायत्री से प्रत्येक हिन्दू को चार बार सन्ध्या करनी चाहिये। इससे पारलौकिक पुण्य तो होगा ही, साथ ही लौकिक लाभ भी यह होगा कि यदि अर्द्ध रात्रि के समय सन्ध्या करने लग जांय तो फिर चौर आदि का भयभी नहीं रहेगा। कारण कि जितने भी चोरी

आदि पाप कर्म होते हैं वे प्रायः इसी समय में ही हुवा करते हैं। उस समय यदि सन्ध्या के अर्थ जागरण हो जाय तो फिर इसका भय ही नहीं रहता।

नौ नामों से भगवान् की स्तुति करे फिर "धीमहि" से भगवान् का इस प्रकार ध्यान करे।

"योऽसावादित्ये पुरुषः सोऽसावहमस्मि ओं खं ब्रह्म"

कि जो सूर्य में स्वर्ण जैसे रंग का प्रकाश स्वरूप पुरुष है वह मैं हूं। फिर 'धियो यो नः प्रचोदयात्' से प्रार्थना करे। अर्थ सहित चाहे एक बार जपो वह भी कल्याण के देने वाला है। वेद का मन्त्र है, भगवान् की आज्ञा है, इससे पाप नष्ट होते हैं और ज्ञान का प्रकाश होता है।

गायत्री का माहात्म्य

ओं गायत्र्यस्येकपदी द्विपदी त्रीपदी चतुष्पद्य-पदसि न हि पद्यसे। नमस्ते तुरीयाय दर्शताय पदाय परोरजसेऽसावदो मा प्रापदिति। तस्या उपस्थानं उपेत्य

स्थानं नमस्करणं अनेन मन्त्रेण कर्तव्यम् । हे गायत्रि ! त्वं त्रैलोक्यात्मपादेनैकपद्यसि भवसि । त्रैविद्यपादेन त्वं द्विपदी प्राणाद्यात्मकपादेन त्वं त्रिपदी । मण्डलान्तरगत-पुरुषलक्षणेन पादेन त्वं चतुष्पदी असि । एतैश्चतुर्भिः पादैः त्वं उपासकैः पद्यसे ज्ञायसे । निरुपाधिकेन स्वयमात्मना त्वमपदसि । पद्यते येन तत्पदं न विद्यते पदं यस्याः सा त्वं अपदसि । यस्मात् केनापि न ज्ञायसे नेति नेत्यादि लक्षणत्वात् । तुभ्यं व्यवहार विषयाय दर्शताय पदाय परोरजसे नमोऽस्तु नमस्कारोऽस्तु । त्वप्राप्तिविघ्नकरोऽदः पाप रूपस्य शत्रोर्यत्त्वत्प्राप्ति विघ्न-कर्तृत्वं मम मा प्रापन्मा प्राप्नोतु ॥१॥

ऊपर के मन्त्र से नमस्कार करनी चाहिये । हे गायत्री ! तू त्रैलोकी रूप से एक पदवाली है, त्रिविद्या रूप पाद से दो पैर वाली है, प्राणात्मक पाद से तीन पैर वाली है, मण्डलगत पुरुष रूप से चार पैर वाली है ! इन चार पैरों से तुम उपा-

सकों से जानी जाती हो। लेकिन उपाधि रहित स्वयमात्मरूप से बिना पैर वाली हो। क्योंकि किसी से तुम जानी नहीं जा सकती हो सब वेदों में नेति नेति ऐसा कहने से। व्यवहार के दिखाने के लिये लोकों से परे आपको नमस्कार हो तुम्हारी प्राप्ति में कोई विघ्न पाप रूपी शत्रु का न होवे ॥१॥

एतद्ध वै स्मर्यते बुडिलं अश्वतराश्वस्यापत्यमाश्वतराश्विं प्रत्युवाच। अहो आश्चर्यमेतत् यस्त्वं गायत्रिविदसीत्यब्रूथा अथ कथं प्रतिग्रहदोषेण हस्तीभूतो वहसि। बुडिल आह हे सम्राडस्याः गायत्र्याः मुखमहं न विदाञ्चकार न विज्ञातवानस्मि। तमुवाच इतर आह तस्याः गायत्र्या अग्निरेव मुखम्। सर्वं पापजातं सम्यग्भक्षयित्वाऽग्निवच्छुद्धः पापसंस्पर्शरहितः। एवं गायत्र्यात्माऽजरोऽमरश्च संभवति। क्रममुक्ति फलत्वं दर्शयति॥२॥

ऐसा कहा जाता है कि बुडिल से राजा जनक ने पूछा कि बड़े आश्चर्य की बात है कि "मैं

गायत्री के जानने वाला हूं" ऐसा तुम कहते थे फिर क्यों प्रतिग्रह के दोष से हाथी हो कर मुझे ले जाते हो ? बुडिल बोला हे राजन्! मैं इस गायत्री के मुख को नहीं जानता था। उसके ऐसा कहने पर जनक ने कहा कि उस गायत्री का अग्नि ही मुख है। सब पापों के समूहों को अच्छी तरह से नष्ट करके अग्नि की भान्ति शुद्ध पाप स्पर्श से रहित होकर गायत्री के प्रभाव से आत्मा अजर अमर हो जाता है। मुक्ति का फल दिखलाते हैं ॥२॥

कूर्मपुराणे—

प्रधानं पुरुषः कालो ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः ।
सत्वं रजस्तमस्तिस्रः क्रमाद्व्याहृतयः स्मृताः ॥३॥

प्रधान, पुरुष और काल, ब्रह्मा, विष्णु, महेश, सत्व रज तम यह क्रम से व्याहृति हैं ॥३॥

गायत्र्याः प्रकारमाह योगी याज्ञवल्क्यः—

ओंकारं पूर्वमुच्चार्य भूर्भुवः स्वस्तथैव च ।
गायत्रीं प्रणवश्चान्ते जपोह्येष उदाहृतः ॥४॥

योगी याज्ञवल्क्य कहते हैं:-

प्रथम ओंकार का उच्चारण करके पीछे भूर्भुवः स्वः उच्चारण करे फिर गायत्री और फिर प्रणव का उच्चारण करे। यह जप कहलाता है ॥४॥

तेन आद्यन्तेयः प्रणवो जप्यः ॥ ५ ॥

इस वास्ते आदि और अन्त में प्रणव जपना चाहिये ॥५॥

मांगल्यं पावनं धर्म्यं सर्वकाम प्रसाधनम् ।
ओंकारः परमं ब्रह्म सर्वमन्त्रेषु नायकः ॥६॥

मांगलीक, पवित्र करने वाला, धार्मिक तथा सब कार्यों को सिद्ध करने वाला ओंकार रूप पर-ब्रह्म सब मन्त्रों का नायक है ॥ ६ ॥

यथा पर्णं पलाशस्य शंकुनैकेन धार्यते ।
तथा जगदिदं सर्वमोंकारेणैव धार्यते ॥७॥

जिस प्रकार से पलाश का पत्ता एक शंकु के द्वारा ही धारण किया जाता है। उसी प्रकार से यह समस्त संसार ओंकार से धारण किया जाता है ॥७॥

जपेन दहते पापं प्राणायामैस्तथा मलम् ॥८॥

जप से पाप नष्ट होते हैं, और प्राणायाम से मल नष्ट होते हैं ॥ ८ ॥

सर्वमन्त्रप्रयोगेषु ओमित्यादौ प्रयुज्यते ॥९॥

सब मन्त्रों के प्रयोग में 'ओं' यह आदि में प्रयुक्त किया जाता है ॥ ९ ॥

सिद्धानाञ्चैव सर्वेषां वेदवेदान्तयोस्तथा ।
अन्येषामपि शास्त्राणां निष्ठाऽओंकारउच्यते॥१०॥

सब सिद्धों की और वेद और वेदान्तों की तथा अन्य शास्त्रों की भी निष्ठा ओंकार कहा जाता है ॥१०॥

ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म व्याहरन्मामनुस्मरन् ।
यः प्रयाति त्यजन् देहं स याति परमां गतिम्॥११

'ओं' यह एक अक्षर ब्रह्म का उच्चारण करता हुवा तथा मेरा स्मरण करता हुवा जो शरीर छोड़ कर जाता है वह परम गति को प्राप्त होता है ११॥

अथाहमर्थं गायत्र्याः प्रवक्ष्यामि यथातथम् ।

द्विजोत्तमानां सद्भक्त्या जपादीनि प्रकुर्वताम् ॥१२

जप आदि करते हुवे उत्तम द्विजों की सद्भक्ति से अब मैं गायत्री का यथार्थ अर्थ कहूंगा ॥१२॥

द्वाभ्यां विश्वासभक्तिभ्यां जपादीनां महत्तरम् ।
फलं भवेज्जपकृतामिति वेदेषु भाषितम् ॥१३॥

विश्वास और भक्ति के द्वारा जप करने वालों को जपों का बहुत फल होता है यह वेदों में कहा है ॥ ३॥

तदिति द्वितीयैकवचनं अनेकजगदुत्पत्तिस्थिति-लयकारणीभूतमुपकथ्यमानं निरुपमं तेजः सूर्यमण्डला-भिधेयं परं ब्रह्म अभिधीयते। सवितुरिति षष्ठ्येकवचनं। सूङ् प्राणिप्रसवे सर्वस्य भूतजातस्य प्रसवितुः । वरेण्यं वरणीयं प्रार्थनीयम् । सततं ध्येयं भर्गः । भंजो आमर्दने भृजि भर्जने, भ्राज् दीप्तौ, भर्गस्तेजः भजतां पापभञ्जन हेतुभूतम् । देवस्य वृष्टिदानादि गुणयुक्तस्य धीमहि

मध्ये चिन्तयामि निगमनिरुक्त विद्यारूपेण चक्षुषा योऽसावादित्ये हिरण्यमयः पुरुषः सोऽहमिति चिन्तयामि।

'तत्' यह द्वितीया का एक वचन है अनेक संसार की उत्पत्ति, स्थिति लय में कारण होता हुवा उपमा रहित सूर्य मण्डल नामक तेज परब्रह्म कहा जाता है। "सवितुः" यह षष्ठी का एक वचन है। सूञ्, प्राणि प्रसवे इस धातु से बना है! समस्त संसार का "वरेण्यम्" प्रार्थना करने योग्य, निरन्तर ध्येय "भर्ग=तेज, भजन करने वालों के पाप नष्ट करने में जो कारण है "देवस्य" = वर्षा दानादि गुणों से युक्त को, "धीमहि" = हम चिन्तन करते हैं। निगम निरुक्त विद्या रूपी चक्षु से जो यह आदित्य में हिरण्यमय पुरुष है सो मैं हूं यह ध्यान करता हूं ॥१४॥

यत्तेजः सवितुर्देवस्य वरेण्यं तदुपास्महे ।

तत्तेजो नो बुद्धीः श्रेयस्करेषु प्रचोदयात्॥१५॥

सूर्य देव का जो श्रेष्ठ तेज है उसकी उपासना

करते हैं, वह तेज हमारी बुद्धि को अच्छे कामों में प्रेरणा करे ॥ १५ ॥

जपस्याभ्यन्तरे व्याख्या स्मर्तव्या मनसा द्विजैः ।
स्मरणात्सर्वपापानि प्रणश्यन्ति न संशयः ॥१६॥

जप के अन्दर द्विजों को मन से व्याख्या याद करनी चाहिये । स्मरण करने से सब पाप नष्ट हो जाते हैं इसमें कोई संशय नहीं है ॥ १६ ॥

गायन्तं त्रायते यस्मात् ॥ १७ ॥

गायत्री गाने वाले को संसार से पार करती है ॥ १७ ॥

सरस्वतीति नाम्ना च समाख्याता महर्षिभिः ।
सवितृप्रकाशकरणात्सावित्रीत्यभिधाऽभवत् ॥१८

महर्षियों ने गायत्री को सरस्वती नाम से कहा है। सविता को प्रकाश करने से सावित्री कहा है ॥ १८ ॥

तस्मादियं सदोपास्या निशादिवसयोर्द्विजैः ।
गायत्री सन्धिवेलायां सैव सन्ध्येति कीर्तिता॥१९

इस वास्ते द्विजों को सदा इसकी उपासना करनी चाहिये। गायत्री सन्धि वेला में सन्ध्या कहलाती है ॥ १६ ॥

ब्रह्मकेशवरुद्रादिदेवताभिरुपासिताम् ।
सन्ध्यां तां को न सेवेत विप्रः स्यादभिलाषुकः॥२०

ब्रह्म, केशव और रुद्रादि देवताओं से उपासना की हुई गायत्री को इच्छा रखने वाला कौन ब्राह्मण नहीं जपे ॥ २० ॥

प्रातः सतारकां सन्ध्यां सायं सन्ध्यां सभास्कराम् ।
नोपास्ते यो द्विजः सन्ध्यां सोहि शूद्रत्वमाप्नुयात् ॥२१

सहित तारों के प्रातःकाल की सन्ध्या को और सूर्य सहित सायंकाल की सन्ध्या को जो द्विज नहीं करता वह शूद्रत्व को प्राप्त होता है ॥२१

उपास्ते सर्वपुण्यानि कृतवान् स भवेदलम् ।
सन्ध्योपास्ते विना विप्रः पुण्यान्यान्यानि चाचरेत् ।
यत्तस्य तानि पापानि भवन्त्येव न संशयः ॥२२

गायत्री की उपासना करता हुवा सब पुण्यों को प्राप्त होता है। सन्ध्योपासना के बिना जो ब्राह्मण और पुण्यों को करता है वे उसके पाप ही हो जाते हैं ॥ २२ ॥

नाशयेत् जन्मजनितं पापं दश जपत् मनोः ।
पुराकृतं शतजपाद्गायत्र्यास्तु द्विजन्मना ।।२३

मनुष्य के जन्म के पैदा हुये पाप दश गायत्री मन्त्र के जाप से नष्ट हो जाते हैं! और सौ बार मन्त्र जपने से पूर्व जन्म का किया हुवा पाप भी नष्ट होता है ॥ २३ ॥

कृतं युगेपि चैकस्मिन्सहस्रेण जपेन तु ।
सद्भक्त्या जपतस्तस्माद्गायत्रीं सर्वदा जपेत् ।।२४

कलियुग के अन्दर एक सहस्र जप से भक्ति पूर्वक जपते हुये के सब पाप नष्ट हो जाते हैं इसलिये गायत्री को जपे ॥ २४ ॥

हिंसयाऽन्ये प्रवर्तन्ते जपयज्ञो न हिंसया।

यावन्तः कर्मयज्ञाश्च दानानि च तपांसि च ।
ते सर्वे जपयज्ञस्य कलां नार्हन्ति षोडशीम्॥२५

और यज्ञ हिंसा से प्रवृत्त होते हैं परन्तु जप यज्ञ हिंसा से प्रवृत्त नहीं होता जितने कर्म, यज्ञ, दान तप हैं वे सब जप यज्ञ की सोलहवीं कला के बराबर भी नहीं होते ॥ २५ ॥

जपेन देवता नित्यं स्तूयमाना प्रसीदति ।
प्रसन्ना विपुलान्भोगान् दद्यान्मुक्तिश्च शाश्वती॥२६

जप से नित्य स्तुति किया हुवा देवता प्रसन्न होता है। प्रसन्न होकर के बहुत से भोग तथा शाश्वत मुक्ति को देता है ॥ २६ ॥

यक्षराक्षसवेतालप्रेतभूतपिशाचकाः ।
जपाश्रयं द्विजं दृष्ट्वा दूरं ते यान्ति भीतिताः ॥२७

यक्ष, राक्षस, बेताल, प्रेत, भूत, पिशाच जप में बैठे हुवे द्विज को देख कर डर कर दूर चले जाते हैं ॥ २७ ॥

तस्माज्जपः सदा श्रेष्ठः सर्वस्मात् पुण्यसाधनात् ॥ २८ ॥

इसलिये सब पुण्य साधनों से जप ही श्रेष्ठ है ॥ २८ ॥

सर्वपापविनिर्मुक्तः सर्वविद्याविशारदः ।
यथा धान्यधनोपेतो जीवेद्वर्षशतं सुखी ॥२९॥

सब पापों से मुक्त होकर धन धान्य से पूर्ण होकर के आनन्द पूर्वक सौ वर्ष तक जीवे ॥ २६ ॥

एतद्विधानं योऽधीत्य श्रावयेत् ब्राह्मणोत्तमान्।
प्रीतिपूर्वं प्रयत्नेन ब्राह्मणो नियमेन च ॥
अज्ञानेन प्रमादेन दुरितं यत्समुत्थितम् ।
तस्य तत्सकलं नाशं व्रजेदत्र न संशयः ॥३०॥

इस विधान को पढ़ कर जो ब्राह्मण प्रयत्न और नियम से उत्तम ब्राह्मणों को सुनावे उसके अज्ञान तथा प्रमाद से पैदा हुये समस्त पाप नष्ट हो जाते हैं। इसमें कोई सन्देह नहीं ॥ ३० ॥

अनागतां तु ये पूर्वामवनीताञ्च पश्चिमाम् ।

सन्ध्यां नोपासते विप्राः कथं ते ब्राह्मणाः स्मृताः॥३१॥

जो विप्र प्रातःकाल तथा सायंकाल की सन्ध्या नहीं करते हैं वे ब्राह्मण किस तरह से स्मरण किये जाते हैं ॥ ३१ ॥

सायं प्रातः सदा सन्ध्यां ये न विप्रा उपासते।
कामं तान् धार्मिको राजा शूद्रकर्मसु योजयेत् ॥३२॥

सायंकाल तथा प्रातःकाल की सन्ध्या को जो ब्राह्मण नहीं करते हैं धार्मिक राजा उनको शूद्र कर्म में लगावे ॥ ३२ ॥

भरद्वाजेन संक्षेपेण दर्शितः विस्तार भयात् ॥३३॥

भरद्वाज जी ने विस्तार के भय से संक्षेप से बतलाया है ॥ ३३ ॥

प्रणवव्याहृतियुतां गायत्रीं च जपेत् ततः।
समाहितमनास्तूष्णीं मनसा चापि चिन्तयेत् ॥३४

इसके बाद प्रणव तथा व्याहृति युक्त गायत्री का जप करे मन को एकाग्र करके चुपचाप मन से चिन्तन करे ॥ ३४ ॥

ध्यायेच्च मनसा मन्त्रं जिह्वौष्ठौ न च चालयेत् ।
न कम्पयेच्छिरोग्रीवां दान्तान्नैव प्रकाशयेत् ॥३५॥

मन ही मन मन्त्र का जप करे, जीभ और होठ को न हिलावे, शिर को तथा गर्दन को कंपावे नहीं तथा दांतों को न दिखावे ॥ ३५ ॥

विधियज्ञात् जपयज्ञो विशिष्टो दशभिर्गुणैः ।
उपांशुः स्याच्छतगुणः साहस्रो मानसः स्मृतः ॥३६॥

विधि यज्ञ से जप यज्ञ दशगुणा श्रेष्ठ है सौ गुणा उपांशु और सहस्र गुणा मानस यज्ञ है ॥३६॥

पूर्वां सन्ध्यां जपं स्तिष्ठेत्सावित्रीमाऽर्कदर्शनात् ।
पश्चिमां तु समासीनः सम्यगृक्ष विभावनात् ॥३७॥

प्रातःकाल की सन्ध्या सूर्य दर्श पर्यन्त सावित्री को जपता हुवा करे। और सायंकाल की सन्ध्या तारों के दीखने तक ॥३७॥

तिष्ठंश्चेद् वीक्षमाणोर्कं जपं कुर्य्यात्समाहितः ।
अन्यथा प्राङ् मुखः कुर्य्यात्समासीनः कुशासने ॥३८॥

प्रातःकाल की सन्ध्या सूर्य को देखता हुआ सावधान होकर करे। दूसरी पूर्वाभिमुख होकर कुशासन पर बैठ कर करे ॥ ३८ ॥

कृष्णाजिने ज्ञानसिद्धिर्मोक्षश्रीर्व्याघ्र चर्मणि ।
वशाजिने व्याधिनाशः सर्वं वै चित्रकम्बले ॥३९॥

कृष्ण मृग की चर्म पर ज्ञान सिद्धि, व्याघ्र की चर्म पर मोक्ष श्री, हस्ती की चर्म पर व्याधि नाश तथा चित्र कम्बल पर समस्त सिद्धियां प्राप्त होती हैं ॥ ३९ ॥

पादेन पदमाक्रम्य जपं नैव तु कारयेत् ,
न पाणिपादचपलो न नेत्रचपलो द्विजः ।
न च वाक्चपलश्चैव जपन्सिद्धिमवाप्नुयात् ॥४०॥

पैर के ऊपर पैर रख कर जप नहीं करे। चञ्चल हाथ पैर वाला तथा चपल नेत्र वाला और बहुत बोलने वाला, जप करता हुआ सिद्धि को प्राप्त नहीं होता ॥ ४० ॥

जानूर्वोरन्तरे सम्यक् कृत्वा पादतले उभे ।
ऋजुकायः समासीनः स्वस्तिकासनमुच्यते ॥४१॥

जानुओं के बीच में दोनों पैरों को अच्छी तरह करके तथा नम्र शरीर होकर बैठा हुवा स्वस्तिकासन कहाता है ॥ ४१ ॥

ऊर्वोर्मध्ये तथोत्तानौ पाणी कृत्वा ततो दृशौ ।
नासाग्रे विन्यसेद् दृष्टिं पद्मासनमिदं स्मृतम् ॥४२॥

दोनों जंघाओं के बीच में पादतल रख कर ऊपर दोनों हाथ रक्खे और इधर उधर न देखकर नासिका के अग्रभाग में दृष्टि लगावे इसको पद्मासन कहते हैं ॥ ४२ ॥

वस्त्रेणाच्छाद्य स्वकरं दक्षिणं यः सदा जपेत् ।
तस्य तत्सफलं जप्यं तद्धीनमफलं भवेत् ॥४३॥

जो कोई कपड़े से दायें हाथ को ढक कर जप करता है उसी का जप सफल कहाता है अन्यथा निष्फल कहाता है ॥ ४२ ॥

जपकाले त्वक्षमालां गुरोरपि न दर्शयेत् ॥४४॥

और जप के समय रुद्राक्ष की माला गुरु को भी न दिखावे ॥ ४४ ॥

गायत्री नाम पूर्वाह्णे सावित्री मध्यमे दिने ।
सरस्वती च सायान्हे सैव सन्ध्या त्रिषु स्मृता ॥४५॥

प्रातःकाल गायत्री तथा दोपहर सावित्री और सायंकाल को सरस्वती के नाम से ही गायत्री तीनों समय सन्ध्यास्मरण की गई है ॥ ४५ ॥

गायत्री प्रोच्यते तस्मात् गायन्तं त्रायते यतः ।
सवितृद्योतनात् सैव सावित्री परिकीर्तिता ।
जगतः प्रसवितृत्वात् वाग्रूपत्वात् सरस्वती ॥४६॥

ऋष्यशृङ्ग

यह गायत्री इसलिये कहाती है कि यह गाने वाले को संसार से तिरा देती है तथा सविता (सूर्य) को द्योतन करने से इसको सावित्री कहते हैं। और जगत् को पैदा करने तथा वाणी रूप होने से सरस्वती कहाती है ॥४६॥

सर्वात्मना हि या देवी सर्वभूतेषु संस्थिता

गायत्री मोक्ष हेतुर्वै मोक्षस्थानक लक्षणम् ॥४७॥

कूर्म पुराणम्

जो गायत्री देवी सम्पूर्ण प्राणियों के हृदय में आत्मा रूप से विराजमान है वह गायत्री ही मोक्ष का कारण है तथा मोक्ष स्थान का लक्षण है ।४७॥

गायत्री निरतं हव्यकव्येषु विनियोजयेत् ।

तस्मिन्न तिष्ठते पापमब्बिन्दुरिव पुष्करे ॥४८॥

गायत्री का प्रयोग सदा हव्य कव्यों में करना चाहिये। गायत्री के प्रयोग से उनमें पाप इस भांति नहीं ठहरता जैसे कमल पत्र पर जल विन्दु नहीं ठहरता है ॥४८॥

यज्ञदानरतो विद्वान् साङ्गवेदस्य पाठकः ।

गायत्री ध्यानपूतस्य कलां नार्हति षोडशीम् ॥४९॥

जो विद्वान् अंग सहित वेदों का पाठ करता है तथा यज्ञ दान आदि में लगा रहता है वह

गायत्री के ध्यान से पवित्रात्मा वाले की सोलहवीं कला के भी तुल्य नहीं है ॥४९॥

अस्मिन् चतुर्विंशत्यक्षराभावः तथापि "वरेण्यं" पदस्थं यवर्णमादाय चतुर्विंशति संख्या परिपूर्यते ॥५०

इस गायत्री में चौबीस अक्षरों का अभाव है परन्तु वरेण्यं इस पद में यकार को पृथक् निकाल कर चौबीस की गणना की है ॥५०॥

वेदस्याध्ययनं कार्यं धर्मशास्त्रस्य वापि यत् ।
अजानतार्थं तत्सर्वं तुषानां कण्डनं यथा ॥५१॥

वेद का अथवा धर्मशास्त्र का अध्ययन करना चाहिये। उसके अर्थ के बिना जाने तुषों को कूटने के समान फल होता है ॥५१॥

यथा पशुर्भारवाही न तस्य भजते फलम् ।
द्विजस्तथार्थानभिज्ञो न वेदफलमश्नुते ॥५२॥

जिस तरह पशु किसी वस्तु को ढोता है परन्तु उसके फल से अनभिज्ञ है इसी भांति वेद

के अर्थ को न जानने वाला द्विज वेद फल को प्राप्त नहीं होता ॥५२॥

पाठमात्ररतान्नित्यं द्विजातींश्चार्थवर्जितान् ।
पशूनिव च तान् प्राज्ञो वाङ्मात्रेणापिनार्चयेत् ॥५३॥

जो द्विज अर्थ को न जानते हुये पाठ मात्र में रत हैं पशुतुल्य उनको बुद्धिमान् पुरुष वाणी से भी आदर न करे ॥५३॥

गायत्र्या ब्राह्मणमसृजत त्रिष्टुभा राजन्यं जगत्या वैश्यम् । इदं सर्वं भूतं प्राणिजातं यत्किंच स्थावरं जङ्गमं वा तत्सर्वं गायत्री एव । शब्दरूपा सति सर्वं भूतं गायती गायत्री च शब्दायते त्रायते च रक्षति । अमुष्मात् मा भैषीः किं ते भयमुपस्थितम् । सर्वतो भयान्निवर्त्यमानो वाचा त्रातः स्यात् । गायति च त्रायते च गायत्री । गानात् त्राणाच्च गायत्रीत्वम् । यद्यपि परमेश्वरः सर्वत्र अभिन्नरूपतया वर्तमानस्तथापि समुपासने एव विशिष्ट फलप्रदो नान्यथा । इदमपि दृष्टान्ततया योगीयाज्ञवल्क्येन कथितम् ॥५४॥

इस जगत् में गायत्री से त्रिवर्ग ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्य उत्पन्न हुये। यह सब कुछ प्राणीमात्र स्थावर तथा जंगम है सब गायत्री ही है। शब्द रूप होने से गायत्री सबकी रक्षा करती है। इस से मत डर तेरे भय क्यों उत्पन्न हुवा है सब तरफ से भय को हटा कर मन वाणी की रक्षक गायत्री है। गाने और तिराने से गायत्री कहाती है। मन से तथा रक्षा करने से गायत्री है। यद्यपि भगवान् निराकार रूप से सर्वत्र वर्तमान हैं परन्तु उपासना करने से ही विशेष फल के देने वाले हैं। अन्य उपाय से नहीं यह बात योगी याज्ञवल्क्य ने दृष्टांत रूप से कही है ॥५४॥

गवां सर्पिः शरीरस्थ न करोत्यङ्गपोषणम् ।
निःसृतं कर्मसंयुक्तं पुनस्तासां तदौषधम् ॥५५॥

जैसे गौवों के शरीर में घी विद्यमान है परन्तु उनके अंगों का पोषक नहीं है और यदि उसी घी को निकाल कर काम में लाया जाय तो उनको औषध रूप होता है ॥५५॥

एवं स हि शरीरस्थः सर्पिर्वत् परमेश्वरः ।
विना चोपासनादेव न करोति हितं नृषु ।।५६।।

इसी तरह ईश्वर घी के समान शरीर में विराजमान है परन्तु ध्यान आदि के बिना मनुष्यों का हित नहीं करता ।।५६।।

न भिन्नां प्रतिपद्येत गायत्रीं ब्रह्मणा सह ।
सोऽहमस्मीत्युपासीत विधिना येन केनचित् ।।५७।।

गायत्री को ब्रह्म से भिन्न न जाने तथा जिस किसी विधि से ऐसी उपासना करे कि मैं भी ब्रह्म ही हूं ।।५७।।

गायत्रीस्थ भर्ग पद प्रतिपाद्य ईश्वरः । अहं जीव रूपोऽस्मि भवामि, जीवेश्वरयोः अहंकार प्रतिबिम्बित-त्वोपाधिरहितेन चिद्रूपेण ऐक्यं भावयन् उपासीत इति रघुनन्दनः ।।५८।।

गायत्री में स्थित भर्ग पद ईश्वर का प्रतिपादक है। और मैं जीव रूप से हूं। जीव तथा ईश्वर में

अहंकार प्रतिबिम्ब को उपाधि से रहित तथा चैतन्य रूप से एक स्वरूप जानता हुवा उपासना करे। यह रघुनन्दन का मत है ॥५८॥

बहुषु उपायेषु गायत्री एव तदुपासनायाः प्रधानोपायः इति प्राक् दर्शितेषु शास्त्रेषु प्रसिद्धम् विशेषतः गायत्र्यर्थः परंब्रह्म एतदर्थमपि अनेन मन्त्रेणैव उपासना श्रेयस्करी ॥५९॥

सो उपासना के बहुत से उपाय हैं उनमें गायत्री ही प्रधान उपाय है। यह प्राचीन शास्त्रों में प्रसिद्ध है। विशेष कर अर्थयुक्त गायत्री ही परब्रह्म है इसलिये भी इसी मन्त्र से उपासना कल्याण प्रद है ॥५९॥

वाच्यः स ईश्वरः प्रोक्तो वाचकः प्रणवः स्मृतः।
वाचकेऽपि च विज्ञाते वाच्य एव प्रसीदति ॥६०॥

उस ईश्वर को वाच्य कहते हैं और ओंकार वाचक है। वाचक के भी जान लेने पर वाच्य ही प्रसन्न होता ॥६०॥

यस्य यस्य च मन्त्रस्य उद्दिष्टा या च देवता ।
तदाधारं भवेत्तस्य दैवतं देवतोच्यते ॥६१॥

जिस २ मन्त्र का जो देवता होता है वह मंत्र उसके आधार रहता है इसलिये वह उसका देवता कहाता है ॥६१॥

पुराकल्पे समुत्पन्ना मन्त्रः कर्मार्थमेव च ।
अनेनैव तु कर्त्तव्यं विनियोगः स उच्यते ॥६२॥

पहले समय में मन्त्र कर्म की सिद्धि के लिये ही उत्पन्न हुये थे इसीलिये इसका जप करना चाहिये यह विनियोग कहाता है ॥६२॥

सविता देवता तस्या मुखमग्निस्तथैव च ।
विश्वामित्र ऋषिश्छन्दो गायत्री तु विधीयते ॥६३॥

उस गायत्री का सूर्य देवता है और अग्नि मुख है तथा विश्वामित्र ऋषि है और गायत्री छन्द कहा है ॥६३॥

विश्वस्य जगतो मित्रं विश्वामित्रः प्रजापतिः ।

विनियोगोपनयने प्राणायामे जपे तथा ॥६४॥

विश्व अर्थात् संसार का मित्र होने से विश्वामित्र प्रजापति कहाता है। इसका इस्तैमाल जप, प्राणायाम तथा यज्ञोपवीत के समय बताया है ॥ ६४ ॥

ब्राह्मण सर्वस्वे विष्णुधर्मोत्तरे दर्शितम्:—

कर्मेन्द्रियाणि पञ्चैव पञ्च बुद्धीन्द्रियाणि च ।
पञ्चबुद्धीन्द्रियार्थाश्च भूतानां चैव पंचकम् ॥
मनो बुद्धि स्तथैवात्मा अव्यक्तं च यदुत्तमम् ।
चतुर्विंशतिरेतानि गायत्र्या अक्षराणि च ।
प्रणवं पुरुषं विद्धि सर्वगं पञ्च विंशकम् ॥६५॥

ब्राह्मण सर्वस्व विष्णु धर्मोत्तर में दिखाया है। पांच कर्मेन्द्रिय तथा ज्ञानेन्द्रिय और ज्ञानेन्द्रियों के विषय तथा पञ्च भूत व मन बुद्धि तथा आत्मा और सर्व श्रेष्ठ अव्यक्त (ईश्वर) यह चौबीस गायत्री के आधार हैं। और सर्व व्यापक आदि पुरुष ओंकार को पचीसवां जानो ॥६५॥

सारभूतास्तु वेदानां गुह्योपनिषदो मताः ।
ताभ्यः सारस्तु गायत्री तिस्रो व्याहृतयस्तथा ॥६६॥

चारों वेदों का सार उपनिषद् हैं और उपनिषदों का सार व्याहृति सहित गायत्री है ॥६६॥

एवं यस्तु विजानाति गायत्रीं ब्राह्मणस्तु सः ।
अन्यथा शूद्रधर्मा स्याद् वेदानामपि पारगः ॥६७॥

इस प्रकार से जो गायत्री को जानता है वह ही ब्राह्मण है और जो नहीं जानता वह चारों वेदों का पारगामी भी क्यों नहीं हो शूद्र है ॥६७॥

या सन्ध्या सैव गायत्री द्विधा भूता व्यवस्थिता ।
सन्ध्या उपासिता येन विष्णुस्तेन उपासितः ॥६८॥

जो गायत्री है वह सन्ध्या है और जो सन्ध्या है वही गायत्री है । जिसने गायत्री की उपासना करली उसने विष्णु की उपासना करली ॥६८॥

गोभिल ऋषि कहते हैं:—

सन्ध्या येन न विज्ञाता सन्ध्या नैवाप्युपासिता ।

जीवमानो भवेच्छूद्रो मृतः श्वा चाभिजायते ॥६९॥

जिसने गायत्री को नहीं जाना और उपासना नहीं की वह जीता हुवा शूद्र है और मरकर कुत्ते की योनि को प्राप्त होगा ॥६९॥

गायत्री प्रोच्यते तस्मात् गायन्तं त्रायते यतः ॥७०॥

इसका नाम गायत्री इसलिये है कि यह गाने वाले को संसार सागर से पार कर देती है ॥७०॥

गायत्री वेदजननी गायत्री पापनाशिनी ।
गायत्र्यास्तु परं नास्ति दिवि चेह च पावनम् ॥७१॥

गायत्री वेद की माता है, गायत्री पाप नष्ट करने वाली है गायत्री के अतिरिक्त भूलोक में तथा स्वर्ग लोक में पवित्र करने वाला और नहीं है ॥७१

* गायत्री जप प्रकार *

गायत्र्याः जपप्रकारमाहयोगी याज्ञवल्क्यः

ओंकारं पूर्वमुच्चार्य भूर्भुवः स्वस्तथैव च ।
गायत्रीं प्रणवश्चान्ते, जपो ह्येव उदाहृतः ॥
तेन आद्यन्ते प्रणवो जप्यः ।

प्रथम ओंकारका उच्चारण करे, फिर भूर्भुवः स्वः का। गायत्री के अन्त में प्रणव ओंकार लगावे। यह जप का लक्षण है। ऐसा ही मनु में भी लिखा है:-

ब्रह्मणः प्रणवं कुर्यादादावन्ते च सर्वदा।

वेद मन्त्र के आदि अन्त में ओंकार का उच्चारण करना चाहिये।

मम हृदय मध्ये वाह्ये च सूर्यमण्डल मध्ये वर्तमान तेजसा एकीभूतं परब्रह्म स्वरूपं ज्योतिरहं इति चिन्तयन् जपं कुर्यात्।

मेरे हृदय के बीच में जो जीवात्मा है और बाहर जो आदित्य के मध्य में जो प्रकाशमान पुरुष है उसके साथ में एकीभूत हुवा जो परब्रह्म का स्वरूप है वह ज्योति स्वरूप परब्रह्म मैं हूं ऐसा चिन्तन करता हुवा जप करे। ओंकार चाहे एक लगावे, चाहे दो लगावे और चाहे तीन लगावे सब में कल्याण ही कल्याण है। दोष किसी में नहीं पुण्य ही पुण्य है। यह सब जप करने वाले

की रुचि पर है। गायत्री का जप ज्ञान का उदय करता है मोक्ष दायक है, बुद्धि दायक है, पापों का नाशक है। इसमें तर्पण, आह्वान, विसर्जन आदि का जो अड़ंगा लगाया गया है वह किसी अन्य सकाम कर्म के लिये है। चारों वेदों में गायत्री समान रीति से आई है। वहां कोई उपाधि नहीं है, पूर्व से ब्राह्मण लोग इस गायत्री को सब से बड़ा मन्त्र मानते रहे हैं अब कुछ दिन से स्वार्थ आजाने के कारण जो सब से अच्छी वस्तु समझी वह दूसरे को देना न चाहा अपने ही लिये रखना चाहा। इस वास्ते आह्वान विसर्जन, वशिष्ठ का शाप, ब्रह्मा का शाप, वरुण विश्वामित्र का शाप लगा दिया। इन चारों के शाप मोचन मन्त्र, चौबीस मुद्रा, तर्पण, कवच इत्यादि उपाधि लगादी। न तो बारह मन तेल हो न नथिया नाचे। भोले भाले जीवों ने समझा कि ऐसे अड़ंगे में क्यों पड़ें सीधा राम नाम जपें। उनकी भी यही मनशा थी कि गायत्री और कोई न जपें हम ही जपें। ऐसे विचार

से तो पाप होता है। केवल ओंकार, व्याहृति और त्रिपदा गायत्री मिला करके जपने से पुण्य ही पुण्य होता है। और सब अड़ंगा त्याग दें। इसी के जपने से पाप नष्ट होते हैं और मोक्ष की प्राप्ति होती है। प्रातःकाल खड़े होकर सूर्य मण्डल को देखता हुवा यह ख़याल करे कि यह मैं हूं। चाहे बैठ करके, चाहे चलता फिरता चाहे सोता, चाहे किसी भी हालत में हो सूर्य आदि सारे विश्वको सत्ता स्फूर्ति ज्ञान, प्रकाश और आनन्द के देने वाला जो परमात्मा है वह मैं हूं ऐसा येन केन प्रकार से ब्रह्मात्मैक्य रूप से चिन्तन करे। व्यास जी ने भी कहा है:-

न भिन्नां प्रतिपद्येत गायत्रीं ब्रह्मणा सह।
सोऽहमसीत्युपासीत विधिना येन केन चित्॥

यह गायत्री का अर्थ है कि हम उस परमात्मा का अभेद रूप से ध्यान करें जो हमारी बुद्धियों को ब्रह्मात्मैक्य रूप ज्ञान के लिये प्रेरणा करे वा करता है। जो तेज पुण्य प्रकाश स्वरूप आनन्द

स्वरूप है, ज्ञान और आनन्द देने वाला है, जो सर्व श्रेष्ठ और सब से उपासना करने योग्य है, सब के उत्पन्न करने वाला, पालन करने वाला, प्रेरणा करने वाला, पवित्र करने वाला है और अनन्त अपार है।

"सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म"

सच्चिदानन्द स्वरूप ऐसा जो परमात्मा है वही मैं हूं। देह, इन्द्रिय, मन, बुद्धि आदि मैं नहीं हूं। यह सब भ्रान्ति है।

"सर्वोहमस्मीति उपासीत"

सब कुछ मैं हूं, मेरे सिवाय कुछ नहीं, जैसा यह उपनिषद् का मन्त्र है:-

सर्वात्मकोऽहं सर्वोऽहं सर्वातीतोऽहमद्वयः ।
केवलाखण्ड बोधोऽहं स्वानन्दोऽहं निरन्तरः॥

गायत्री में कहे भगवान् के नौ नामों से स्तुति करे कि हे परमात्मा ! तू ऐसा है, तू ऐसा है, धीमहि से अभेद रूप से ध्यान करे कि नौ नामों

में कहा हुवा जो परमात्मा है वह और मैं एक हूं। परमात्मा हमको ऐसा ही दृढ़ निश्चय देवे यह प्रार्थना है। यही इस मन्त्र की सब से उत्तम जपने की विधि है। इससे सब पाप नष्ट हो जाते हैं और कोई दोष लगता नहीं। पाप में कभी मन जाता नहीं और सम्यक् ज्ञान का प्रकाश हो जाता है। तब जीव कृत कृत्य होकर मुक्ति को प्राप्त होता है। इसको पूर्वापर सोचो और विचारो सब सन्देह नष्ट हो जायगा। बुद्धिमानों के लिये इतना ही पर्याप्त है।

॥ ओ३म् शम् ॥

—

भक्ति प्रेस

ार संग्रह

ति चिन्तामणि

द सदाचार संग्रह

क्ति ज्ञान योग संग्र

न धर्मोपदेश

नुस्मृतिसार

दाचार

द संग्रह (गुटका

ाश्रम का इतिहा

ी भगवद्गीता

ी भगवद्गीता

ी भगवद्गीता-

ेदोपनिषद्

ाषा फक्किकाप्र

ैराग्य शतक (

द्याऽनुवाद स

भक्ति प्रेस की पुस्तकें

	मूल्य	पोस्टेज
१ सार संग्रह	।)	–)।।।
२ भक्ति चिन्तामणि	।≡)	=)।
३ शब्द सदाचार संग्रह	≡)	–)।
४ भक्ति ज्ञान योग संग्रह	=)।।	–)।
५ ज्ञान धर्मोपदेश	–)।।।	)।।।
६ मनुस्मृतिसार	≡)।	–)।।
७ सदाचार	–)	)।।।
८ शब्द संग्रह (गुटका)	=)	–)।
९ आश्रम का इतिहास	–)	)।।।
१० श्री भगवद्गीता	।।=)	।)
११ श्री भगवद्गीता गुटका	=)।।	–)।।
१२ श्री भगवद्गीता-मूलमात्र नित्यपाठ		–)।।
१३ वेदोपनिषद्	=)।।	–)।।
१४ भाषा फक्किकाप्रकाश	।)	–)।।
१५ वैराग्य शतक (हिन्दी पद्याऽनुवाद सहित)	=)	)।।।

१६ अष्टोत्तरशतमन्त्रमाला	~)	)॥।
१७ गीता मञ्जरी	।)	~)।
१८ श्री परमानन्दामृत	।=)	)॥।

"भक्ति" प्रेस श्रीभगवद्भक्ति आश्रम रेवाड़ी।